बात कहानियों में सामाजिक मूल्यों का चित्रण

*डॉ. गोकुल चन्द सैनी

सामाजिक मूल्यों का चित्रण

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर व्यक्ति को उसके द्वारा निर्धारित आदर्शों का पालन करना पड़ता है जिसके लिए अनेक नियम व उपनियम होते हैं "जो समाज की आधारशिला होते हैं। वास्तव में ये नियम भी मनुष्य द्वारा ही तय किये गये होते हैं जो उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होते हैं। मानव एक ऐसा सर्वोत्कृष्ट प्राणी है जो संस्कृति का निर्माता है और संस्कृति द्वारा ही कुछ नियम व्यवहार, लक्ष्य, उद्देश्य आदि निर्धारित होते हैं जिनके आधार पर कार्य करने पर व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है। यही आदर्श मूल्य कहलाते हैं जो बताते हैं कि अच्छा क्या है ? क्या बुरा है ? क्या करना चाहिए ? क्या नहीं करना चाहिए ? इस प्रकार सामाजिक मूल्य वे आदर्श होते हैं जो सामाजिक व्यवस्था को सुचारूरूपेण चलाने में सहायक होते हैं। यदि इन आदर्शों की परिपालना न की जायेगी तो समाज व्यवस्था अमर्यादित हो जायेगी, अव्यवहारिक हो जायेगी, अव्यवस्थित हो जायेगी। मूल्य उच्च–स्तरीय मानदण्ड होते हैं जिनके आधार पर सामाजिक परिस्थितियों को देखा या उनका मूल्याकन किया जा सकता है। मूल्य प्रत्येक समाज के भिन्न–भिन्न होते हैं–ये तो व्यवहार करने का एक मापदण्ड कहे जा सकते हैं जो किसी समाज में उचित–अनुचित, कर्त्तव्य–अकर्तव्य को तय करते हैं। समाज के सामान्य निमय होते हैं जिनकी पालना करना समाज का कर्तव्य होता है। मूल्य चूंकि समाज में ही विकसित हेाते हैं अतः इनमें अवहेलना करने वाले को समाज निन्दनीय मानता है। अतः कहा जा सकता है कि मूल्य व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने के तरीके हैं जो बताते हैं कि क्या सही है और क्या करना अपेक्षित है।

सामाजिक मूल्य : अर्थ एवं परिभाषा

सामाजिक मूल्यों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए जॉनसन ने कहा है– मूल्यों को एक अवधारणा अथवा मानक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि सांस्कृतिक हो सकता है या केवल व्यक्तिगत और जिसके द्वारा चीजों की एक–दूसरे के साथ तुलना की जाती है, स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। एक–दूसरे की तुलना में उचित या अनुचित अच्छा या बुरा ठीक अथवा गलत माना जाता है। उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर जॉनिसन मूल्यों के द्वारा सभी प्रकार की वस्तुओं जैसे– भावना, विचार, क्रिया, गुण, व्यक्ति, लक्ष्य आदि का मूल्यांकन कर सकते हैं।

डॉ. राधा कमल मुखर्जी मूल्यों को इस प्रकार परिभाषित करते है–

सामाजिक मूल्य वे सामाजिक मान, लक्ष्य या आदर्श हैं जिनके आधार पर विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। मुखर्जी के मत में मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त लक्ष्य है जो सामाजिककरण की प्रक्रिया के माध्यम से आन्तरीकृत किए जाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक मूल्य आदर्श हैं जो दैनिक जीवन में व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं। ये वे मानक हैं जिनके आधार पर किसी लक्ष्य, साधन, भावनाओं, व्यक्ति के व्यवहारों आदि को अच्छा अथवा बुरा कहा जा सकता है। मूल्य स्वयं के उद्देश्य भी हैं जो स्पष्ट करते है कि क्या होना चाहिए। मूल्यों का निर्माण सम्पूर्ण समूह के सदस्यों की परस्पर अन्तः क्रिया की परिणाम होता है क्योंकि व्यक्ति इन्हें सामाजीकरण की प्रक्रियां द्वारा सीखता है। मूल्य प्रत्येक समाज के अलग–अलग होते हैं– निष्कर्षतः मूल्य व्यवहार का सामान्य तरीका है। ये वह मानदण्ड हैं जो समाज में अच्छे या बुरे, सही अथवा गलत का निर्धारण करते हैं।

सामाजिक मूल्यों की विशेषताएं

1. सामूहिकता – सामजिक मूल्य किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित नहीं होते अपितु सम्पूर्ण समाज या समूह द्वारा ना होते हैं अर्थात मूल्यों का सामाजिक–सांस्कृतिक आधार होने के कारण ये समूचे समाज की विशेषता होते हैं, क्योंकि ये सामूहिक अन्तः क्रिया के द्वारा उत्पन होते हैं। किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर नहीं होते। इसलिए यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि मूल्यों में सामूहिकता होती है।
2. समूह की एकमतता – मूल्यों के विषय में यह स्पष्ट है कि ये एक समाज या समूह के समस्त सदस्यों द्वारा मान्य होते हैं। सम्पूर्ण समूह मूल्यों के विषय में एकमत होता है। इसी कारण व्यक्ति इनकी अनुपालना न करने पर निन्दनीय माना जाता है।
3. समाज कल्याण की भावना से प्रेरित – मूल्य समाज कल्याण की भावना से जुड़े होते है। 'सदा सत्य बोलो', 'जीवों पर दया करो' आदि इसी प्रकार के मूल्य हैं। सम्पूर्ण समाज के कल्याण की भावना से संबंधित है, जिनकी परिपालना करने पर समाज में संगठन व एकरूपता बनी रहती है।
4. सामूहिक भावना – सामाजिक मूल्यों के साथ व्यक्तियों की भावनाएं जुड़ी रहती है। इसी कारण व्यक्ति अपने वैयक्तिक हितों को भुलाकर इन मूल्यों की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। मूल्य एक आदर्श होते है। देशभक्ति, स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र आदि इसी प्रकार के उच्च मूल्य हैं जिनके लिए व्यक्ति अपने प्राणोत्सर्ग भी हंसते–हंसते कर देते हैं।
5. विशिष्टता – मूल्यों के विषय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रत्येक समाज के मूल्य अलग–अलग होते हैं जो उस समाज की संस्कृति के आधार पर होते हैं, उदाहरणार्थ–विवाह एक धार्मिक कृत्य है जिसे तोडा नहीं जा सकता, यह भारतीय मूल्य है। पश्चिमी समाज में 'विवाह एक समझौता है' इसके अनुसार ही वहां पति–पत्नी में सम्बन्ध स्थापित होते हैं। अतः निकर्षतः कहा जा सकता है कि मूल्यों में विभिन्न समाजों के अनुरूप भिन्नता पाई जाती है।
6. परिवर्तनशीलता – सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन अत्यन्त मन्द गति से आता है, लेकिन ये परिवर्तित होते अवश्य हैं। मूल्य चूंकि सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होते हैं अतः समाज की आवश्यकताएं जब बदलती हैं तो उसके मूल्यों में भी बदलाव आ जाता है क्योंकि मूल्य समाज के अनुसार ही होते हैं अतः सामाजिक मूल्यों में गतिशीलता पाई जाती है जो समय एव परिस्थितियों के अनुरूप होती है।
7. सामाजिक आवश्यकताओं के पूरक – मूल्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं, चूंकि प्रत्येक समाज की अलग संस्कृति होती है जो उसकी आवश्यकता के अनुसार बनती है और प्रत्येक समाज व संस्कृ ति अलग–अलग मूल्यों को विकसित करती हैं जो उनकी है आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं जिनके कारण ही सामाजिक संगठन व व्यवस्था बनी रहती है। इस प्रकार सामाजिक मूल्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी मूहत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बात–कहानियों में समाज के विभिन्न स्वरूपों को उदघाटित करने का प्रयास किया गया है। समाज में नई चेतना, विकास और इस दृष्टि से हो रहे परिवर्तनों को लक्षित किया गया है – वहीं नवीनता के प्रसार से जीवन मूल्यों में आ रहे परिवर्तन को भी इनमें अभिव्यक्त किया गया है। कहानियों की सामाजिकता के सम्बन्ध में डॉ. किरण नाहटा का मत है 'राजस्थानी कहानी साहित्य में सामाजिक जीवन को आधार बना कर लिखी गई कहानियों का प्राधान्य रहा है, जिसमें समूह–जीवन परिवारिक जीवन और वैयक्तिक जीवन अर्थात समष्टि से व्यष्टि जीवन तक की परिस्थितियों और समस्याओं को भिन्न भिन्न स्तरों पर छुआ गया है। इन सामाजिक कहानियों में लेखकीय दृष्टिकोण के अनुसार दो स्थिस्तियां विशेष रूप से प्रभावित रही हैं। एक ओर सुधारवादी भावना से प्रेरित होकर लिखी गई

कहानियां हैं, जिनमें तात्कालिक समाज की किसी एक कुरीति या समस्या का आदर्श समाधान करने का प्रयास हुआ है या फिर उनमें समाज के लिए अहितकर परम्पराओं का ऐसा कारूणिक अन्त चित्रित किया गया है कि पाठक उससे प्रेरित होकर उस स्थिति के निवारण को उत्साहित हो। दूसरी ओर ऐसे किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखने की अपेक्षा कहानीकार का दृष्टिकोण सामाजिक या पारिवारिक जीवन के किसी एक पहलू को यथा तथ्य रूप में अंकित करने या फिर बदलते सामाजिक जीवन और परिवर्तित होते मूल्यों को दर्शाने का रहा है। प्रथम प्रकार की कहानियों को आदर्शवादी एवं आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी एवं दितीय प्रकार की कहानियों को यथार्थवादी कहानियों की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। 1

सामाजिक जीवन के अन्तर्गत देथा जी ने समाज के पिछड़े तबके की भावनओं और संवेदनाओं को उभारने का साहसिक प्रयत्न किया है। समाज में व्याप्त वर्ग विषमता और शोषण की स्थितियां, जीवन के संकटों – समस्याओं को चित्रित करने के साथ–साथ सामाजिक जन–जीवन के मधुर रंगों को भी वैविध्य के साथ प्रस्तुत किया है।

लोक साहित्य ही एक ऐसा साहित्य है जिसमें संस्कृति का तथा स्वाभाविक चित्रण उपलब्ध होता है। देथा जी ने समाज में जिस समता या विषमता का अनुभव किया है उसका उसी रूप में चित्रांकन भी किया है। पारिवारिक जीवन के जो मर्मस्पर्शी दृश्य यहां उपलब्ध हैं, उसके दर्शन अन्यत्र कहां ? ऐसा ज्ञात होता है कि जन–जीवन को चित्रित करने वाले 'चतुर चितेरे' ने बडे समय से अपनी तूलिका का प्रयोग किया है। समाज के सुन्दर तथा दिव्य दृश्यों का चित्रांकन करने में उसकी तूली खूब फलीभूत हुई है। जहां पर बातों में प्रजा और राजा का दिव्य प्रेम दिखलाया गया है। जैसे– "सौभाग्य से राजा–रानी पूर्ण चांदनी के उनमान निर्मल एवं शीतल थे। प्रजा के सुख में ही उनका सुख था। पहले प्रजा का परितोष, फिर सिंहासन का सन्तोष, प्रजा के कल्याण में ही खजाने की गरिमा थी। प्रजा ही उस राज्य की संरक्षक थी। जब राजा प्रजा की खातिर जान देने को हाजिर था, तब प्रजा उसके लिये क्यों प्रतिक्षण मुस्तैद नहीं रहती। हर परिवार का प्राणी–क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या पुरूष और क्या स्त्री, सभी उस राज्य के शुभचिन्तक थे। 2 वहां जागीरदारों के अत्याचारों एवं ग्रामीणों के साथ कटु एवं विषाक्त व्यवहार का वर्णन भी है। इस दृष्टि से विजयदांन देथा की 'समाधान' कहानी को देखा जा सकता है, जिसमें

ठाकुर के अत्याचारों से ठिकाने की प्रजा बुरी तरह उत्पीड़ित दिखाई देती है। जैसे– उस ठिकाने में जीवन की दाझ मौत से भी अधिक विकराल थी। मरने के अलावा–दुःख, सन्ताप और अभावों से बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं था। गढ़ के अलावा किसी भी घर या गवाड़ी के लिए न तो गाय–मैंस या बकरी की छूट थी और न वार–त्यौहार घी–गुड़ में कुछ भी मीठा बनाने की इजाजत थी। सफेद या मटिया साफा बांधने की बजाय कोई व्यक्ति भूलचूक से भी दूसरे रंग का साफा बांध लेता तो इक्कीस जूतों का दण्ड। मरोड़ वाली बांकी मूँछों के ग्याहर जूते। साफे की पूँछ के सत्रह, धोती के पल्लू की सजा सिर्फ तेईस जूते। गढ़–कोट के पुराने खंडहर और जाली–झरोखों के अलावा किसी गांव में सफेद मकान नहीं था। यदि कोई भूल से घोड़ा–घोड़ी खरीद लेता तो नौ दिन तक सरे बाजार गधे पर उसकी सवारी निकलती। ठाकुर क्या था, यन का ही प्रत्यक्ष अवतार। ठाकुर के नाम से नींद में भी प्रजा चौंक–चौंक उठती। 3 इसके अलावा बादशाहों, राजाओं, जागीरदारों और सेठ–साहूकारों आदि के ऐश्वर्य का चित्र उपस्थित किया है, उनके सुन्दर वस्त्र, बढ़िया स्वादिष्ट भोजन, आलीशान भवन आदि वैभव को प्रकट करने वाले तमाम चित्र उपस्थित हैं। जैसे– "हरी–भरी बस्ती में एक सेठ का घरबार। अथाह माया और अमित व्यापार। ऊँची हवेली और ऊँचा ही वितान। घर–घर आशा और घर–घर सम्मान। सेठानी पूर्णतया स्वस्थ और सम्पुष्ट। बेहद सुन्दर और सलोनी। दो शादीशुदा सपूत। गुणवन्ती सुलच्छनी बहुएं। हर काम में कुशल और रसोई में प्रवीण। घी–दूध की इफरात। बस्ती की कोई औरत या बच्चा छाछ के लिए आता है तो बहुएं किसी को मना नहीं करती। बीमार के लिए दूध की भी मनाही नहीं थी। और न गरीब प्रसवती औरत के लिए घी की। गृहस्थी का सुख हो तो ऐसा, वरना सब

झंझट। 4 वहां दूसरी ओर साधारण किसान की गरीबी, फटी हुई ऊंची–ऊंची धोती–सात टुकड़े लगाये हुए कमीज, हाथ में हल और बैलों को साथ लेकर खेत की ओर जाते हुए शोषित किसानों का वर्णन पाठकों एवं बात श्रोताओं के हृदय का अपनी और बरबस आकर्षित किये बिना नहीं रहता। इस दृष्टि से विजयदांन देथा की 'मेहनत सार' 'बजरा लेगा या आटा', 'मोके की सूझ', 'ठाकुर का भूत', 'गोगे की
मठाई', आशा 'अमरधन' तथा 'समय–समय की हवा' आदि बातें प्रसिद्ध है।

बातों में वर्णित समाज पारम्परिक और मुक्त, ग्राम्य और नगरीय सरल और जटिल, सभ्य और आदिम तथा नवीन और प्राचीन संस्कृति को सहेजे हुए है। देथा जी की बातों में समाजिक मूल्यों को निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है–

कुटुम्ब

कुटुम्ब समाज की एक इकाई इसे बेहत्तर समाज का एक लघु रूप भी कह सकते हैं। समाजशास्त्र ने इसे 'एक समाज' कहकर समाज से भिन्नता प्रदान की है। राजस्थानी भाषा में कुटुम्ब के लिए 'कडूम्बा' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। अपनी जाति–गोत्र समूह के लोग कडूम्बा की परिधि में आते हैं। वैदिककालीन कौटूम्बिक परम्परा का राजस्थानी समाज में अभी भी निर्वाह किया जाता है। कुटुम्ब का परिवार व्यक्ति पर नियंत्रण होता है। अनेक रीति–रिवाजों एवं अवसरों पर कुटुम्ब के सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य होती है। विवाह आदि के अवसर पर बारात में जाने वाले ज्यादातर सदस्य परिवार व कुटुम्ब से ही सम्बन्ध रखते हैं। इस दृष्टि से विजयदांन देथा की 'नागिन तेरा वंश बढ़े' व दुविधा कहानी को लिया जा सकता है। "नागिन तेरा वंश बढ़े' कहानी में गांव चौधरी के बेटे की बारात में जाने के लिये "इक्कीस बैलगाड़ियां तैयार खड़ी थीं। वीलिए के पहुँचते ही सब अपनी–अपनी ठौर जम गये। रासें फटकारते ही बैल सर धुनते हुए पूँछ सीधी करके आगे बढें। 5 इस प्रकार कुटुम्ब के सदस्यों का समाज में विशेष महत्व है।

संयुक्त परिवार

भारत में संयुक्त परिवार की महता अनादिकाल से रही है। संयुक्त परिवार की अवधारणा नितांत भारतीय परिवार दर्शन की अवधारणा है। आदर्श संयुक्त परिवार परस्पर स्नेह, सहयोग, उत्तरदायित्व की अनुप्रेरणा से प्रेरित होता है। संयुक्त परिवार में समूह के कल्याण की भावना पाई जाती है। संयुक्त परिवार के लिए कहा गया है–यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। भारतीय संस्कृति के सभी आदर्श तत्वों का यह पूंज है– सहिष्णुता, समन्वय, त्याग, धर्म–परायणता, मानवता, निरन्तरता आदि सभी आदर्श और शक्तिशाली तत्वों को यह अपने में संजोए है।6

***व्याख्याता– हिन्दी**
स्वामी विवेकानन्द राजकीय महाविद्यालय,
खेतड़ी

संदर्भ

1. आधुनिक राजस्थानी साहित्य : डॉ. किरण नाहटा, पृष्ठ–63
2. सपनप्रिया : विजयदांन देथा, कहानी सप्रनप्रिया, पृष्ठ 31
3. उजाले के मुसाहिब : विजयदांन देथा, समाधान कहानी, पृष्ठ–93
4. सपनप्रिया : विजयदांन देथा, कहानी अदल–बदल, पृष्ठ 93
5. बातां री फलवाडी (भाग–10) : विजयदांन देथा, नागिन तेरा वंश बढ़े, पृष्ठ 209
6. भारतीय समाज डॉ. एम.एम. लवनिया एवं शशी के. जैन, पृष्ठ–209